Indian Streams Research Journal
Vol -2 , ISSUE –10, November - 2012
ISSN:- 2230-7850
Available online at www.lbp.world

बिहार की सामाजिक राजनीतिक संरचना की ऐतिहासिक पृष्ठभूमी

शम्भु नाथ सुमन
बी० ए०, एम० ए० (इतिहास),
शोध छात्र
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वर नगर, दरभंगा

भूमिका

प्रस्तुत शोध कार्य आधुनिक बिहार के बदलते परिवेश में राजनीतिक चेतना एवं सामाजिक न्याय का विकास (१९४७-२००५): एक ऐतिहासिक अध्ययन पर आधारित है। इसके अन्तर्गत स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बिहार की सामाजिक एवं राजनैतिक इतिहास का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। जैसे-जैसे बिहार में आधुनिक शिक्षा का विस्तार होता गया, बिहार ने शिद्दत से बंगाल के शोषण के बारे में सोचना प्रारम्भ किया। फलतः बिहारी या क्षेत्रीय चेतना का विकास बिहार में होता गया, जिसके फलस्वरूप एवं प्रशासनिक कारणों से बिहार को बंगाल प्रेसीडेंन्सी से इतर एक राज्य का दर्जा मिला। पृथक् प्रान्त के रूप में १ अप्रैल १९१२ को बिहार का गठन हुआ, एवं अगले लगभग तेइस वर्षों तक उड़ीसा अनावश्यक रूप से इससे जुड़ा रहा। भारत में औपनिवेशिका शासन और इसके शोषण के फलस्वरूप हुए सामाजिक-आर्थिक- राजनीतिक एवं प्रशासनिक परिवर्तनों के कारण इसके समाज का आन्तरिक संतुलन बिगड़ने लगा एवं जातीय व्यवस्था में परिवर्तन एवं बदलाव उभरने लगे। हलांकि यह भी सत्य है कि जातियों एवं उनके बीच के आपसी समीकरण समय-समय पर बदलते रहे हैं, किन्तु यह परिवर्तन अधिकतर मध्यम जातियों में परिलक्षित होती है।

औपनिवेशिक बिहार में नौकरशाही

औपनिवेशिक बिहार में नौकरशाही पर मुख्यतया बंगाली, कायस्थों एवं मुसलमानों का वर्चस्व था, अधिकतर इसी तबके के लोग आधुनिक शिक्षा में निष्णात भी थे। वहीं दूसरी ओर जमींदारी मुख्यतः भूमिहारों, ब्राह्मणों, राजपूतों, कायस्थों एवं उच्च वर्गीय मुसलमानों के अधीन थी। इस प्रकार हम पाते हैं कि समाज में मध्यम वर्ग का ठीक से उदय नहीं हो पाया था, एवं अभिजात्यों एवं सवर्णों का समाज एवं सरकार पर दबदबा था। साथ ही यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि कृषि के वाणिज्यिकरण एवं व्यापार में विस्तार के कारण छोट-छोटे उद्योग उभर रहे थे, साथ ही प्रशासनिक सुधार के क्रम में नए जिले एवं सब जिले कायम हो रहे, नगरीकरण का दर भी काफी तीव्र नजर आता है। इन आर्थिक प्रशासनिक सुधारों ने आधुनिक शिक्षा को विस्तार देना प्रारम्भ किया एवं राजनीतिक चेतना को जन्म दिया।

जैसे-जैसे नगरीकरण का दर तीव्र होता गया, लोगों में शिक्षा के प्रति चेतना जगती गयी। शिक्षा के प्रसार ने मध्यम वर्ग को जन्म दिया। साथ ही नगरीकरण एवं नव-औद्योगिकरण ने रोजगार के नए अवसर उपस्थित किए। अभी तक इन अवसरों का उपभोग बंगाली कुछ हद तक बिहारी कायस्थ या मुसलमान करते थे। नए मध्यम वर्ग के उदय ने बिहारियों को इन अवसरों का लाभ उठाने के लिए उकसाया, फलतः मध्यम वर्ग ने 'बिहार के बंगाल से पृथ्क्करण' के लिए आवाज

बुलन्द की। अन्ततः १९१२ में इन्हें इसमें सफलता भी हासिल हुई और बिहार का बंगाल से इतर निर्माण हुआ। अब इस नव–निर्मित बिहार के प्रशासनिक एवं आर्थिक अवसरों पर कब्जा जमाने के लिए बिहार के विभिन्न जातियों में आपसी प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ हुई। फलतः बिहार में जातीय सभाओं का गठन होने लगा।

विभिन्न जाति के पढ़े लिखे एवं असरदार लोगों ने अपनी–अपनी जाति को संगठित करने का प्रयास प्रारम्भ किया। इस क्रम में जाति सभाओं का गठन लगभग बिहार की सभी जातियों में हुआ। ब्राह्मणों से लेकर अछूतों एवं अन्त्यजों तक में जाति सभाओं का गठन हुआ। इन जाति सभाओं के द्वारा जाति–विशेष को संगठित एवं विकसित करने का प्रयास किया गया। शिक्षा के प्रसार को काफी शिद्दत के साथ सभी जाति सभाओं ने उठाया। फलतः बीसवीं शताब्दी में बिहारियों में शिक्षा के प्रति रूझान काफी बढ़ा। साथ ही जाति सभाओं ने मद्यपान, जुआ, मांसाहार एवं बहु विवाह प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियों पर भी प्रहार किया। वस्तुतः सभी जातियों ने अपने में सुधार लाने का प्रयास किया, और काफी हद तक उन्हें इसमें सफलता भी मिली।

बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक तक इस जातीय चेतना ने नई करवट लेनी प्रारम्भ कर दी। जातियों में सामाजिक श्रेष्ठता के लिए प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ हो गई। विभिन्न जाति के लोगों ने स्थापित परम्परागत सामाजिक पायदान ने अपनी जाति की श्रेष्ठता के लिए प्रयास करने लगे। विभिन्न जाति सभाओं ने अपने विकास क्रम की नई धारणाएँ पेश की। ये अपने को उच्च वर्ग खासकर द्विज वर्गों से जोड़कर देखने लगे। लगभग सभी जातियों ने अपना उद्भव 'ब्राह्मण' या 'क्षत्रिय' जाति से तलाशने का प्रयास किया और जाति प्रथा के विकास के नए सिद्धान्त उभरकर सामने आने लगे। इस समय सरकारी स्तर पर जनगणना काल में उच्च एवं निम्न जातियों के आधार पर गणना की जाती थी एवं सामाजिक श्रेष्ठता का पायदान निर्धारित किया जाता था। फलतः जाति सभाओं ने जनगणना अधीक्षक के समक्ष प्रतिवेदन देना प्रारम्भ किया और सामाजिक क्रम में उच्चतर श्रेणी के लिए दावेदारी प्रस्तुत करने लगे। यह स्थिति १९३१ के जनगणना काल तक बनी रही।

१९२१ में बिहार में शेष भारत के साथ निर्वाचन की पद्धति प्रारम्भ हुई। विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं में जाति विशेष के हिस्सेदारी के लिए राजनीतिक समीकरण बनने लगे। जातिगत आधार पर पहला ऐसा संघ 'त्रिवेणी संघ' के नाम से सामने आया। मयम श्रेणी की जातियों ने सामूहिक रूप से अपने को एक झण्डे के नीचे गोलबन्द करने का प्रयास किया। इस प्रकार संसदीय नाजनीति का श्रीगणेश ही बिहार में जाति आधारित वोटों के आधार पर हुआ। हलांकि यह समय देश की स्वतंत्रता का था, और राजनीतिक दल स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े थे, यहाँ पर जाति आधारित राजनीति गौण तो रही, किन्तु बिहार इससे मुक्त नहीं रहा।

राजनीतिक स्तर पर समाजवादी, साम्यवादी एवं आगे चलकर नक्सलवादी सभी विचारधाराएँ बिहार में पनपीं, किन्तु सामाजिक आधार पर बिहार जातिय गणित में ही उलझा रहा। सभी राजनीतिक दलों में विभिन्न जाति के लोग जनसंख्या के आधार पर अपना प्रतिनिधित्व मांगते रहे, पहले से विकसित जातियाँ सभी राजनीतिक दलों के शीर्ष नेतृत्व पर कब्जा जमा कर रखने से प्रतिबद्ध दिखीं। एवं मध्यम एवं निम्न श्रेणी की जातियाँ उन्हें वहाँ से अपदस्थ करने या अपनी हिस्सेदारी की मांग करती रही। इस प्रकार बिहार का समाज ही राजनीति पर हमेशा हावी रहा।

सामाजिक तनाव एवं सामाजिक जीवन

सामाजिक तनाव सामाजिक जीवन का एक अपरिहार्य हिस्सा है, जो हर समाज में आगे या पीछे हमेशा पनपता है। हालांकि इस तनाव का वास्तविक कारण आर्थिक विषमता होती है, किन्तु भारत में खासकर बिहार में आर्थिक विषमता से इतर सामाजिक श्रेष्ठता के लिए प्रतिस्पर्धा इस तनाव का विशेष कारण बनकर उभरती रही है। हर सामाजिक तनाव के कारण या परिणाम के रूप में सामाजिक विक्षोम, धोखा, हिंसा, लूट–पाट आदि गैर जिम्मेदाराना हरकत जुड़ी रही है। बिहार में

यह स्थिति १९१०–२७ के मध्य सर्वाधिक देखने को मिलती है। हलांकि यह नहीं कहा जा सकता है कि १९२७ के बाद बिहार का समाज इस सामाजिक उद्ण्डता से बाहर निकल आया, अपितु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद १९७५–८० में पुनः १९८५–९५ के मध्य आरक्षण के लिए पुनः बिहार हिंसा की भेंट चढ़ा वस्तुतः सभी घटनाक्रमों का अनुशीलन करने पर बिहार के समाज में हो रहे परिवर्तन की धारा की तीव्रता एवं आर्थिक विकास की धीमी रफ्तार, जातिय हिंसा को भड़कने में अधिक जिम्मवार रही।

बिहार की लगभग ९७ प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर जीवन निर्वाह कर रही थी। यह स्थिति कमोवेश प्रथम विश्वयुद्ध तक बनी रही। कुछ उद्योगों का विकास बिहार में अवश्य हुआ, किन्तु एक या तो ये उद्योग कृषि–उत्पाद पर ही आश्रित थे या फिर इनकी संख्या काफी कम थी। फलतः गैर–कृषि कर्म में नियोजित लोगों की संख्या काफी कम थी। कृषि पर सर्वाधिक दबाव था और कृषि के तकनीक परम्परागत थे, उपर से औपनिवेशिक शासन में भू–राजस्व शोषणकारी था, कृषि में नील, गन्ना और जूट फायदे के यही तीन उपज थे, जिनपर अंग्रेजों या बड़े जमींदारों का कब्जा था। आर्थिक रूप से कृषक या कृषि मजदूरों की आर्थिक स्थिति दयनीय थी। शोषण इतना अधिक था कि सीमान्त किसान लगातार भूमिहीन कृषि मजदूर बनते जा रहे थे। पूरा समाज सुदखोरी एवं महाजनी के विकट संकट से त्रस्त था। स्वामी विद्यानन्द के नेतृत्व में चला किसान आन्दोलन इसी शोषणकारी महाजनी व्यवस्था का उपज था, वहीं गाँधी का चम्पारण सत्याग्रह बड़े जमींदारों द्वारा छोटे किसानों के शोषण का परिणाम था। स्वामी सहजानन्द सरस्वती के नेतृत्व में किसान सभा की स्थापना हुई और तीव्र किसान आन्दोलन चला फिर भी किसानों खासकर भूमिहीन कृषि मजदूरों की समस्या स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही मुखर स्वरूप ग्रहण कर सकी।

इन कठिन आर्थिक परिस्थितियों में जातीय आन्दोलनों ने समाज पर खासा दबाव डाला। जैसे कि हमने ऊपर वर्णन किया है सभी जातियों ब्राह्मण से दुसाध तक में जातीय सभाओं का गठन हुआ था और समाज सुधार ने आन्दोलन का स्वरूप ग्रहण कर लिया था। इसी समय आर्य समाज में भी बिहार में अपनी जड़ जमा ली। आर्य समाज के कामकाज के चलते पिछड़े समुदायों–यादव, कुर्मी, कोइरी, दुसाध, चमार, और अन्य पिछड़ी और निम्न जातियों के बीच जनेऊ आन्दोलन की धूम मची। पिछड़े समुदयों ने शिक्षा, बेगारी, जाति–लगान, और धार्मिक संस्कारों के लिए सवर्णों के विरूद्ध आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने अपना नाम बदला एवं जाति प्रदर्शित करने वाले उपनामों को छोड़कर 'सिंह' उपनाम जोड़कर क्षत्रित्व ग्रहण करने लगे। सवर्णो ने इसका प्रबल विरोध किया। इस सामाजिक आन्दोलन की झलक हमें सतीनाथ भादुड़ी के 'ढोढाय चरित मानस' और फणीश्वर नाथ रेणु के 'मैला आंचल' में देखने को मिलता है। निम्न वर्गों का यह प्रतिरोध पूरी बीसवीं शताब्दी में बिहार में देखने को मिलता है। जो जनेऊ आन्दोलन से चलकर 'सामाजिक–न्याय' तक लगातार चलता रहा है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में बिहार के समाज में हुए इन्हीं सामाजिक परिवर्तनों को प्रतिपाध्य विषय बनाया गया है।

१८७० से १९०० तक बिहार में सामाजिक विकास एवं राजनैतिक चिंतन का विकास

१८७० से १९०० आते–आते बिहार में सामाजिक विकास एवं राजनैतिक चिंतन का लगभग विकास हो चुका था। बहुत हद तक कृषि के व्यवसायीकरण, शहरीकरण एव कतिपय अन्य आर्थिक विकास के कारणसामाज के मध्यम जातियों में सामाजिक श्रेष्ठता के प्रति ललक पैदा हो रही थी जिसके कारण विभिन्न जातियों में जाति सभा का गठन हुआ और सामाजिक परिष्कार या सामाज सुधार का प्रारम्भ हुआ। अंग्रेजी शिक्षा के विकास में इन जाति सभाओं ने भी योगदान दिया और अंग्रेजी शिक्षा के विकास ने एक शिक्षित मध्यम वर्ग को प्रस्तुत किया। मध्यम वर्ग के उदय के साथ ही राजनीतिक–प्रशासनिक अवसरों पर प्रभुत्व कायम करने के लिए जातीय आधार पर प्रयास शुरू हुए। २०वीं शताब्दी के आरम्भ तक आर्य समाज आन्दोलन आदि चले। पुनः राजनीतिक दलों यथा

कांग्रेस, समाजवादी, साम्यवादी, किसान सभा आदी के उच्च पदों एवं पूर्ण राजनीतिक आन्दोलन पर प्रभुत्व को लेकर जातीय श्रेष्ठता का आन्तरिक कलह या अन्तर्विरोध उत्पनन हुई। फलतः "त्रिवेणी संघ" जैसी जातीय राजनीतिक दलों का जन्म हुआ। १९२३ से १९५७ तक हलांकि कांग्रेस में सवर्णों का दबदवा कायम रहा, फिर भी मध्यम एवं निम्न जातियों द्वारा 'सत्ता में भागीदारी का प्रयास' चलता रहा। जो अन्ततः आरक्षण की शक्ल में 'मंडल आयोग' की परिभाषा उभर कर सामने आयी है।

निष्कर्ष–

सामाजिक न्याय का क्षेत्र व्यापक और बहुआयमी है इसलिये प्राथमिकताओं का चयन करना होगा। सहज लोकप्रियता के लिये अल्पकालिक नीतियों के स्थान पर दीर्घकालिक लाभ देने वाली नीतियों और कार्यक्रमों को क्रियान्वित करना ठीक होगा जिसमें सरकारी और निजी फिजूलखर्ची पर रोक लगाना आवश्यक है।

भारतीय संविधान में न्याय को महत्व देना अच्छा है लेकिन वास्तविक जीवन में सामाजिक न्याय को स्थापित करना कठिन है क्योंकि कानून और संविधान में लिखने को अलावा पूरक प्रावधानों और व्यवहारिक व्यवस्थाओं को स्थापित करना जरूरी होता है। सामाजिक न्याय के लिये सामाजिक–आर्थिक विकास के पर्यावरण का होना भी अनिवार्य है। भारत में इसके लिये विचार और आचार के बीज विसंगति को दूर करना बहुत आवश्यक है।

संदर्भ श्रोतः–

१. सामाजिक न्याय संदेश– जनचेतना हिन्दी मासिक, डॉ, अंबेडकर प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, वर्ष १, अंक ८, जुलाई २००३, पृ. ०४
२. मैथ्यू, पी.डी. (अनु. भारद्वाज, चित्रा) : सामाजिक न्याय संगठन, भारतीय सामाजिक संस्थान नई दिल्ली, १९८७, पृ. ४
३. जाटव, डी.आर. : सामाजिक न्याय का सिद्धांत, समता साहित्य सदन, जयपूर, १९९३, पृ. ७
४. पूरणमल : मानवाधिकार, सामाजिक न्याय और भारत का संविधान, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, २००३, पृ. ७२
५. सैबाइन, जी.एच.– ए हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल थ्योरी, १९७३, पृ. ६५
६. पॉलिटिक्स : बुक टप्प एवं टप्प
७. धवन, हरिमोहन– 'भारत का आर्थिक विकास : दशा और दिशा संदर्थ : सामाजिक न्याय, पूर्व देवा, सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, मध्य प्रदेश दलित साहित्य अकादमी प्रकाशन, उच्चैन, वर्ष ११, अंक ४३, अक्टूबर ०५–मार्च ०६, पृ. ३
८. प्लेटो रिपब्लिक, बुक १, २
९. विली, फ्रेंक–ए हिस्ट्री ऑफ फिलॉसफी, १९४६, पृ. १५५
१०. मेसनर, जे.– सोशल एथिक्स, १९७३, पृ. २३
११. हॉर्ट, एच.एल,ए.–द कन्सेप्ट ऑफ लॉ, १९७०, पृ. १५५
१२. डॉ. बाबा साहब अंबेडकर– राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, खंड ३, १९८९, पृ. २५
१३. सारटोरी, जी.– डेमोक्रेटिक थ्योरी, १९६५, पृ. ३३०